SHODHPATRA: INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENCE AND HUMANITIES
E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 7 | July 2025

पंडित दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय राष्ट्रवाद : एक विश्लेषण

जितेन्द्र सिंह,[1] प्रो० (डॉ०) मीनाक्षी शर्मा [2]
[1] शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, गोकुल दास हिंदू गर्ल्स डिग्री कॉलेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)
ई–मेलः js4385595@gmail.com
[2] विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान विभाग, गोकुल दास हिंदू गर्ल्स डिग्री कॉलेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)
ई–मेलः smeenakshi140@gmail.com

शोध सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण विचारक थे, जिनकी राष्ट्रवादी विचारधारा सांस्कृतिक मूल्यों और आत्मनिर्भरता पर केंद्रित थी। उनका सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भारतीय पहचान, परंपरा, और धर्म आधारित सामाजिक समरसता को राष्ट्र निर्माण का आधार मानता है। यह शोध–पत्र भारतीय राष्ट्रवाद और पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के बीच तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें गांधीवादी, नेहरूवादी, सुभाषवादी और सरदार पटेल के राष्ट्रवादी दृष्टिकोणों की तुलना उपाध्याय के एकात्म मानववाद से की गई है।

यह अध्ययन समकालीन भारतीय राजनीति में उनके विचारों की प्रासंगिकता की जाँच करता है, विशेष रूप से सबका साथ, सबका विकास, आत्मनिर्भर भारत, और मेक इन इंडिया जैसी नीतियों के संदर्भ में। शोध में यह भी विश्लेषण किया गया है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद वैश्विक परिप्रेक्ष्य में कितना व्यवहारिक है और क्या यह समावेशी राष्ट्रवाद का प्रभावी मॉडल हो सकता है। यह शोध भारतीय राष्ट्रवाद के ऐतिहासिक विकास और भविष्य की दिशा पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों के प्रभाव को उजागर करने का प्रयास करता है।

बीज शब्दः भारतीय राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद, आत्मनिर्भरता, अंत्योदय, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, स्वदेशी अर्थव्यवस्था, भारतीय राजनीति, समकालीन भारत, राष्ट्र निर्माण।

भारतीय राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय राष्ट्रवाद एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है, जो भारत की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक संरचना से गहराई से जुड़ी हुई है। इसका विकास सदियों से विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों और विचारधाराओं के माध्यम से हुआ है। भारतीय राष्ट्रवाद को वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक विभिन्न चरणों में देखा जा सकता है।

प्राचीन भारतीय राष्ट्रवाद : वैदिक काल से लेकर महाजनपदों तक

भारत का राष्ट्रवाद पश्चिमी राष्ट्रवाद से भिन्न है। यूरोप में राष्ट्रवाद मुख्य रूप से क्षेत्रीय और राजनीतिक सीमाओं से परिभाषित होता है, जबकि भारत में यह सांस्कृतिक और सभ्यतागत पहचान पर आधारित रहा है।

वैदिक काल (1500–500 ईसा पूर्व) में, भारत को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखा जाता था, जिसका आधार धर्म, भाषा और सांस्कृतिक परंपराएँ थीं। वेदों में भारत को 'भरतखंड' और 'जंबूद्वीप'

के रूप में वर्णित किया गया है, जो यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीयों के मन में एक सांस्कृतिक एकता की भावना थी।[1]

महाजनपद काल (600–300 ईसा पूर्व) के दौरान, 16 महाजनपदों का उदय हुआ, जो भारत में क्षेत्रीय राज्यों की एक संगठित राजनीतिक इकाई की ओर बढ़ने की प्रक्रिया को दर्शाता है। ये महाजनपद स्वतंत्र थे, फिर भी उनमें सांस्कृतिक एकता थी, जो धर्म और सामाजिक परंपराओं से जुड़ी हुई थी। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' में अखंड भारत की अवधारणा को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया, जिसमें उन्होंने 'चक्रवर्ती राजा' की अवधारणा दी, जो संपूर्ण भारत को एक राजनीतिक इकाई के रूप में स्थापित करता था।[2]

औपनिवेशिक युग और राष्ट्रवाद : ब्रिटिश शासन और स्वतंत्रता संग्राम

18वीं और 19वीं शताब्दी में जब ब्रिटिश शासन भारत में स्थापित हुआ, तब भारतीय राष्ट्रवाद का आधुनिक रूप विकसित हुआ। ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण ने भारतीयों को एक समान उद्देश्य के लिए संगठित किया।

प्रारंभिक राष्ट्रवाद (1857–1900)

1857 का स्वतंत्रता संग्राम भारतीय राष्ट्रवाद का पहला व्यापक प्रयास था, जिसमें हिंदू और मुस्लिम दोनों ने मिलकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह किया। यद्यपि यह संग्राम असफल रहा, लेकिन इसने भारत में राष्ट्रवादी चेतना को जन्म दिया।[3]

19वीं शताब्दी के अंत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) का गठन हुआ, जिसने राष्ट्रवादी आंदोलन को संगठित रूप प्रदान किया। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिन चंद्र पाल (लाल–बाल–पाल) ने स्वराज्य की अवधारणा को बढ़ावा दिया और 'स्वदेशी आंदोलन' को लोकप्रिय बनाया।

गांधीवादी राष्ट्रवाद (1920–1947)

महात्मा गांधी ने भारतीय राष्ट्रवाद को एक नई दिशा दी। उन्होंने सत्याग्रह, अहिंसा, स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों को राष्ट्रवादी आंदोलन का आधार बनाया। गांधीजी का राष्ट्रवाद सामाजिक समरसता और सभी वर्गों की भागीदारी पर आधारित था। उनके नेतृत्व में असहयोग आंदोलन (1920), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942) हुए, जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को व्यापक समर्थन दिलाया।[4]

नेताजी सुभाष चंद्र बोस का क्रांतिकारी राष्ट्रवाद

महात्मा गांधी के अहिंसक राष्ट्रवाद से असंतुष्ट सुभाष चंद्र बोस ने भारत की स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष का समर्थन किया। उन्होंने आजाद हिंद फौज (INA) की स्थापना की और 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा' का नारा दिया। बोस का राष्ट्रवाद सैन्य शक्ति और विदेशी सहयोग पर आधारित था। वे मानते थे कि भारत को स्वतंत्रता केवल राजनीतिक वार्ता से नहीं, बल्कि सशस्त्र संघर्ष से प्राप्त होगी।[5]

सरदार पटेल का एकीकृत भारत दृष्टिकोण

स्वतंत्रता के बाद, सरदार वल्लभभाई पटेल ने भारतीय रियासतों के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे 'अखंड भारत' के समर्थक थे और उनका मानना था कि भारत को सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से एकजुट रहना चाहिए। पटेल ने 500 से अधिक रियासतों को भारत में मिलाकर भारतीय राष्ट्रवाद को सुदृढ़ किया। उनका राष्ट्रवाद व्यवहारिक और राजनीतिक एकता पर आधारित था।[6]

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रवाद का स्वरूप

1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, राष्ट्रवाद की अवधारणा ने एक नया स्वरूप ग्रहण किया। स्वतंत्रता के बाद के राष्ट्रवाद को निम्नलिखित चरणों में देखा जा सकता है–

1. **संविधान निर्माण और लोकतांत्रिक राष्ट्रवाद (1950)**
   - भारतीय संविधान को एक धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में तैयार किया गया।
   - संविधान निर्माताओं ने एक ऐसा भारत बनाने की परिकल्पना की, जिसमें सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हों।
2. **नेहरूवादी राष्ट्रवाद (1950–1970)**
   - पंडित जवाहरलाल नेहरू का राष्ट्रवाद समाजवाद, औद्योगीकरण और धर्मनिरपेक्षता पर केंद्रित था।
   - उन्होंने मिश्रित अर्थव्यवस्था और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत के आर्थिक विकास की नींव रखी।
3. **सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उदय (1980 से अब तक)**
   - 1980 के दशक के बाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा प्रमुखता से उभरी।
   - अयोध्या आंदोलन और अन्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान आंदोलनों ने भारतीय राष्ट्रवाद को एक नया स्वरूप दिया।
4. **आधुनिक राष्ट्रवाद और वैश्वीकरण (2000 से अब तक)**
   - वर्तमान समय में, राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक अवधारणा नहीं रह गया है, बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी देखा जा रहा है।
   - 'आत्मनिर्भर भारत' और 'मेक इन इंडिया' जैसी नीतियाँ आर्थिक राष्ट्रवाद का उदाहरण हैं।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी विचार दर्शन

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय राष्ट्रवाद के प्रमुख विचारकों में से एक थे, जिन्होंने भारतीय समाज और राजनीति के लिए एक विशिष्ट विचारधारा प्रस्तुत की। उनका राष्ट्रवाद केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, परंपरा और समाज की मूल आत्मा पर आधारित था। वे राष्ट्र को केवल एक भौतिक संरचना नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक इकाई मानते थे, जिसकी पहचान उसकी परंपराओं, आस्थाओं और मूल्यों से होती है।

उनका राष्ट्रवादी दृष्टिकोण पश्चिमी राष्ट्रवाद से भिन्न था, जो आमतौर पर राष्ट्र को राजनीतिक और कानूनी संस्थाओं के रूप में देखता है। उन्होंने भारत के राष्ट्रवाद को 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की संज्ञा दी और इसे 'एकात्म मानववाद' से जोड़कर प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि राष्ट्र को केवल भौगोलिक सीमाओं या राजनीतिक विचारधाराओं तक सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि यह सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है, जो हजारों वर्षों से चली आ रही परंपराओं से निर्मित होती है।[7]

1. एकात्म मानववाद और राष्ट्रवाद का संबंध

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद न केवल एक राजनीतिक विचारधारा थी, बल्कि यह एक समग्र जीवन–दृष्टि थी, जो भारतीय समाज और राष्ट्र के समन्वित विकास पर आधारित थी। उन्होंने इसे 1965 में भारतीय जनसंघ के एक सम्मेलन में प्रस्तुत किया, जहाँ उन्होंने कहा कि समाजवाद और पूंजीवाद दोनों ही भारत के लिए उपयुक्त नहीं हैं, क्योंकि वे भारतीय जीवनशैली और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप नहीं हैं। एकात्म मानववाद और राष्ट्रवाद के बीच संबंध निम्नलिखित आधारों पर देखा जा सकता है–

- यह राष्ट्र को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखता है, न कि केवल राजनीतिक संगठन के रूप में।
- इसमें राष्ट्र की संप्रभुता केवल सीमाओं की रक्षा से नहीं, बल्कि उसकी संस्कृति और परंपराओं की रक्षा से जुड़ी हुई है।
- यह सामाजिक समरसता, अंत्योदय और स्वदेशी को राष्ट्रवाद का अभिन्न अंग मानता है, जिससे समाज के हर वर्ग को समान अवसर मिल सके।

उन्होंने कहा कि भारत एक राष्ट्र है, क्योंकि इसकी आत्मा, संस्कृति और दर्शन एक हैं। यह विचार आज भी भारतीय राजनीति में गहराई से अंतर्निहित है और सरकार की विभिन्न नीतियों में देखा जा सकता है।[8]

2. धर्म और संस्कृति के आधार पर राष्ट्र की अवधारणा

दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद भारतीय संस्कृति और धर्म पर आधारित था। उन्होंने राष्ट्र की अवधारणा को 'चिति और विराट' के रूप में परिभाषित किया।

- **चिति–** किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक आत्मा होती है, जो उसे अन्य राष्ट्रों से अलग बनाती है।
- **विराट–** इसका अर्थ है राष्ट्र के भौतिक और सामाजिक विकास की अभिव्यक्ति।

उन्होंने कहा कि भारत का राष्ट्रवाद धर्म और संस्कृति से अलग नहीं हो सकता, क्योंकि यह हमारे समाज का आधार है। उन्होंने धर्म को किसी संप्रदाय या पूजा–पद्धति तक सीमित नहीं किया, बल्कि इसे एक समग्र जीवन प्रणाली के रूप में देखा। उन्होंने कहा कि धर्म, जीवन जीने की एक प्रणाली है, जो राष्ट्र के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित रखता है।[9]

उनके अनुसार, राष्ट्र का आधार उसकी संस्कृति होती है, न कि केवल भौगोलिक सीमाएँ। यही कारण है कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को पश्चिमी राष्ट्रवाद से भिन्न बताया। पश्चिम में राष्ट्रवाद भौगोलिक सीमाओं और राजनीतिक संप्रभुता पर आधारित होता है, जबकि भारतीय राष्ट्रवाद अपनी सांस्कृतिक विरासत से प्रेरित होता है।

आज के समय में, जब भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और परंपराओं के संरक्षण की बातें हो रही हैं, तो उपाध्याय जी की यह अवधारणा और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। भारतीय समाज में अयोध्या में राम मंदिर निर्माण, काशी विश्वनाथ कॉरिडोर, और धरोहरों के पुनर्निर्माण जैसी पहलें उनके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विचारधारा को दर्शाती हैं।[10]

3. राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, राष्ट्रीय एकता का आधार किसी बाहरी शक्ति द्वारा थोपा गया ढांचा नहीं होना चाहिए, बल्कि यह भीतर से विकसित होने वाली सांस्कृतिक चेतना पर आधारित होनी चाहिए।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के मुख्य तत्व–

- **भाषा और परंपरा का संरक्षण–** उन्होंने भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से संस्कृत और हिंदी को बढ़ावा देने की बात कही।
- **भारतीय शिक्षा प्रणाली–** उन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्रणाली की आलोचना की और भारतीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता पर जोर दिया।
- **समाज में समानता और समरसता–** उन्होंने जाति–पाति से ऊपर उठकर एक एकजुट भारत की परिकल्पना की, जिसमें हर वर्ग को समान अधिकार मिले।

आज, जब भारत में 'वोकल फॉर लोकल', 'मेक इन इंडिया', और 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' जैसी पहलें हो रही हैं, तो ये उनके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सिद्धांतों से प्रेरित प्रतीत होती हैं।[11]

4. राजनीति में स्वदेशी और आत्मनिर्भरता का महत्व

दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद केवल सांस्कृतिक अवधारणाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें आर्थिक और राजनीतिक स्वावलंबन को भी महत्व दिया गया था। उनका मानना था कि कोई भी राष्ट्र तभी वास्तविक रूप से स्वतंत्र हो सकता है, जब वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो।

स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के सिद्धांत–

- **विदेशी पूँजी पर निर्भरता कम करना–** उन्होंने कहा कि भारत को अपनी आर्थिक नीतियों में स्वदेशी मॉडल अपनाना चाहिए और विदेशी निवेश पर अत्यधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए।
- **गाँवों को आत्मनिर्भर बनाना–** उनका मानना था कि भारत की असली ताकत उसके गाँवों में है, इसलिए गाँवों का विकास आर्थिक राष्ट्रवाद का महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए।
- **स्थानीय उद्योगों और कारीगरों को बढ़ावा देना–** उन्होंने पारंपरिक भारतीय शिल्प, कृषि और लघु उद्योगों को आर्थिक समृद्धि का आधार बताया।

आज के संदर्भ में, 'आत्मनिर्भर भारत अभियान', 'मेक इन इंडिया' और 'स्टार्टअप इंडिया' जैसी योजनाएँ उपाध्याय जी के आर्थिक राष्ट्रवाद को दर्शाती हैं। ये नीतियाँ भारतीय उद्यमिता को बढ़ावा देने और आर्थिक संप्रभुता को मजबूत करने की दिशा में कार्य कर रही हैं।[12]

समकालीन भारतीय राजनीति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवाद की प्रासंगिकता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण आधुनिक भारतीय राजनीति में अत्यंत प्रासंगिक है। उनकी विचारधारा केवल अतीत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आज भी नीति निर्माण, आर्थिक सुधारों, सांस्कृतिक जागरण और राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उनका राष्ट्रवाद केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि यह संस्कृति, अर्थव्यवस्था, और समाज के सभी पहलुओं को समाहित करता था। वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था में उनके विचारों का प्रभाव विभिन्न सरकारी नीतियों और योजनाओं में देखा जा सकता है।

1. सरकारी नीतियों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रभाव

E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 7 | July 2025

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद– उपाध्याय जी का मानना था कि भारत का राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक या आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर आधारित होना चाहिए। उनके अनुसार, एक राष्ट्र की आत्मा उसकी संस्कृति में निहित होती है, और जब तक संस्कृति को संरक्षित नहीं किया जाता, तब तक राष्ट्र अपनी असली पहचान नहीं बना सकता।

वर्तमान राजनीति में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रभाव– आज की भारतीय राजनीति में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक प्रमुख विचारधारा बन चुका है। इसे निम्नलिखित नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से देखा जा सकता हैरू

1. अयोध्या में राम मंदिर निर्माण– यह परियोजना भारत की सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं को पुनःस्थापित करने का एक प्रमुख उदाहरण है। यह विचारधारा उपाध्याय जी की 'राष्ट्रीय पुनरुत्थान' की अवधारणा से मेल खाती है।[13]

2. काशी विश्वनाथ कॉरिडोर और महाकाल लोक परियोजना– यह पहलें भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को पुनः जागृत करने की दिशा में की गई हैं।

3. भारतीय भाषाओं और परंपराओं को बढ़ावा– नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता देना, संस्कृत और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को सशक्त करना, भारतीय ज्ञान प्रणाली को शिक्षा में शामिल करना सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का ही विस्तार है।[14]

4. धरोहर संरक्षण कार्यक्रम– भारतीय पुरातात्विक स्थलों और ऐतिहासिक विरासतों को पुनर्स्थापित करने की सरकारी पहलें, जैसे कि सोमनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण, भारतीय राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक चेतना को मजबूत करती हैं।

2. धर्म, संस्कृति और राजनीति के बीच संतुलन

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दृष्टिकोण– उपाध्याय जी का राष्ट्रवाद धर्मनिरपेक्षता की पश्चिमी अवधारणा से अलग था। उन्होंने इसे 'सर्व धर्म समभाव' (सभी धर्मों का सम्मान) की अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया, जो भारतीय परंपराओं से जुड़ा था। उनका मानना था कि भारत का राष्ट्रवाद उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत से अलग नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी विचार दर्शन भारतीय राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उनका राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक संप्रभुता तक सीमित नहीं था, बल्कि यह संस्कृति, धर्म, सामाजिक समरसता और आर्थिक आत्मनिर्भरता पर आधारित था। उन्होंने 'एकात्म मानववाद' के माध्यम से राष्ट्रवाद की एक नई परिभाषा दी, जो भारतीय परंपराओं और मूल्यों के अनुरूप थी। इस शोध–पत्र में भारतीय राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की विवेचना करते हुए उपाध्याय जी के राष्ट्रवादी विचारों की तुलना गांधी, नेहरू, सरदार पटेल और नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विचारधारा से की गई। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण आधुनिक भारतीय राजनीति के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। उनके विचार केवल ऐतिहासिक या सैद्धांतिक नहीं हैं, बल्कि वे समकालीन नीतियों में जीवंत रूप से मौजूद हैं। उनका सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, सामाजिक समरसता और राष्ट्र की सुरक्षा पर जोर देना आज की शासन प्रणाली में परिलक्षित होता है।

अंततः, यदि पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवाद के मूलभूत तत्वों– 'सांस्कृतिक चेतना, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय सुरक्षा' को सही ढंग से अपनाया जाए, तो भारत न केवल एक शक्तिशाली राष्ट्र बन सकता है, बल्कि अपने सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों को संरक्षित रखते हुए वैश्विक नेतृत्व भी कर सकता है। भारतीय राष्ट्रवाद का विकास विभिन्न ऐतिहासिक चरणों से होकर गुजरा है। वैदिक काल में इसकी सांस्कृतिक नींव रखी गई, महाजनपद काल में राजनीतिक इकाईयाँ उभरीं, औपनिवेशिक काल में स्वतंत्रता संग्राम ने इसे एक राजनीतिक आंदोलन का रूप दिया, और स्वतंत्रता के बाद इसे लोकतांत्रिक, समाजवादी और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के रूप में पुनर्परिभाषित किया गया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद सांस्कृतिक और आर्थिक आत्मनिर्भरता पर आधारित था, जो आधुनिक भारत में भी प्रासंगिक बना हुआ है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण भारतीय परंपराओं, संस्कृति और आत्मनिर्भरता पर आधारित था। उन्होंने राष्ट्र को केवल भौगोलिक संप्रभुता से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक एकता और सामाजिक समरसता से परिभाषित किया। उनका एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, और स्वदेशी अर्थव्यवस्था का सिद्धांत आज भी भारतीय राजनीति और नीतियों में गहराई से समाहित है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद सांस्कृतिक पुनर्जागरण, आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय एकता पर आधारित था। यह भारतीय राष्ट्रवाद की अन्य धाराओं से भिन्न था, क्योंकि यह धर्म, संस्कृति और आर्थिक स्वतंत्रता को राष्ट्र निर्माण की अनिवार्य शर्त मानता था। उनकी विचारधारा आज भी भारतीय राजनीति में प्रभावी है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण आज की भारतीय राजनीति में गहराई से समाहित हो चुका है। उनके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को विभिन्न सरकारी नीतियों में देखा जा सकता है, जैसे कि राम मंदिर निर्माण और भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण के प्रयास। उनकी स्वदेशी और आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की अवधारणा 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' और 'मेक इन इंडिया' जैसी नीतियों में परिलक्षित होती है।

संदर्भ

1. उपाध्याय, दीनदयाल (1965) : एकात्म मानववाद. भारतीय जनसंघ प्रकाशन, पृ०सं० 10–12
2. गुप्ता, आर० (2021) : समकालीन भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय के विचार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ०सं० 34–38
3. त्रिपाठी, एस० (2018) : भारतीय राजनीति और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०सं० 45–50
4. गुप्ता, आर० (2021) : समकालीन भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय के विचार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ०सं० 55–60
5. त्रिपाठी, एस० (2018) : भारतीय राजनीति और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०सं० 78–83
6. गुप्ता, आर० (2021) : समकालीन भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय के विचार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ०सं० 90–95
7. उपाध्याय, दीनदयाल (1965) : एकात्म मानववाद. भारतीय जनसंघ प्रकाशन, पृ०सं० 10–15

8. गुप्ता, आर० (2021) : समकालीन भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय के विचार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ०सं० 20—25
9. त्रिपाठी, एस० (2018) : भारतीय राजनीति और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०सं० 40—45
10. गुप्ता, आर० (2021) : समकालीन भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय के विचार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ०सं० 50—55
11. त्रिपाठी, एस० (2018) : भारतीय राजनीति और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०सं० 60—65
12. गुप्ता, आर० (2021) : समकालीन भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय के विचार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ०सं० 75—80
13. वही, पृ०सं० 45—50
14. त्रिपाठी, एस० (2018) : भारतीय राजनीति और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०सं० 60—65